निशीथ सूत्र

श्री लालचन्द्र जैन

निशीथसूत्र की गणना छेदसूत्रों में होती है। इसमें श्रमणाचार के आपवादिक नियमों एवं उनकी प्रायश्चित्त विधि की विशेष चर्चा है। यह सूत्र विशेष जानकारी हेतु ही योग्य साधुओं को पढ़ाया जाता था, सर्वपठनीय नहीं था, क्योंकि उन नियमों की जानकारी प्रमुख संतों को ही होनी आवश्यक थी। अब तो इस पर भाष्य, चूर्णि आदि का भी प्रकाशन हो गया है। वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री लालचन्द्र जी जैन ने प्रस्तुत आलेख में निशीथ सूत्र पर प्रकाश डाला है।

–सम्पादक

उपलब्ध आगमों में चार आगमों को छेद सूत्र की संज्ञा दी गई है। यह संज्ञा आगमकालीन नहीं है। चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहु स्वामी से पूर्व भी जिनशासन के प्रत्येक साधु-साध्वी के लिये आचारकल्प अध्ययन को कंठस्थ करना आवश्यक था। उस आचारकल्प अध्ययन का परिचय सूत्रों में जो मिलता है, वह वर्तमान में उपलब्ध निशीथ सूत्र का ही परिचायक है। इससे स्पष्ट होता है कि आगमों में निशीथ को आचारांग सूत्र का ही विभाग माना गया है। आचारांग में आचारप्रकल्प अध्ययन का जो मौलिक नाम निशीथ था, वही प्रसिद्ध हो गया और नंदीसूत्र के रचनाकार देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने उसी नाम को स्थान दिया। इससे निशीथ सूत्र की प्राचीनता भी सिद्ध होती है। इसका रचनाकाल आचारांग जितना ही पुराना है।

अनिवार्य कारणों से या बिना कारण ही संयम की मर्यादाओं को भंग करके यदि कोई स्वयं आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करे तो किस दोष का कितना प्रायश्चित होता है, यह इस छेदसूत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य है। अतिक्रम, व्यतिक्रम एवं अतिचार की शुद्ध आलोचना और मिच्छामिदुक्कडं के अल्प प्रायश्चित्त से हो जाती है। अनाचार दोष के सेवन का ही निशीथ सूत्र में प्रायश्चित्त प्रतिपादित है। यह स्थविर कल्पी सामान्य साधुओं की मर्यादा है।

यह आगम अब इतना गोपनीय नहीं रह गया है। तीर्थंकरों के समय में भी अंग शास्त्रों का साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, चतुर्विध संघ अध्ययन करता था। चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी ने भी आचारप्रकल्प अध्ययन को अत्यधिक महत्त्व दिया है। प्रत्येक युवा संत–सती को यह कंठस्थ होना चाहिए, इससे इसकी अतिगोपनीयता समाप्त हो जाती है। कालांतर में आगम-लेखन एवं प्रकाशन युग आया। देश–विदेशों में इनकी प्रतियों का प्रचार हुआ, अतः गोपनीयता अब केवल कथन मात्र के लिये रह गई। योग्य साधु-साध्वी के लिये छेद सूत्र गोपनीय नहीं है, बल्कि इनके अध्ययन बिना साधक की साधना अधूरी है, पंगु है, परवश है। इनके सूक्ष्मतम अध्ययन के बिना संघ-व्यवस्था पूर्ण अंधकारमय हो जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य देववाचक ने नंदीसूत्र में आगम-साहित्य को दो भागों में बांटा है– अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य। छेदसूत्र अंगबाह्य है। इसमें जैन साधु-साध्वियों के जीवन से संबंधित आचार विषयक नियमों का विस्तृत विवेचन है। श्रमण जीवन की पवित्रता बनाये रखने के लिये ही छेद सूत्रों का निर्माण हुआ है। ये नियम स्वयं भगवान महावीर द्वारा निरूपित हैं। छेद सूत्रों में निशीथ का प्रमुख स्थान है। निशीथ का अर्थ ही अप्रकाश्य है। यह सूत्र अपवादबहुल है, इसलिये सब को नहीं पढाया जाता था। निशीथ का अध्ययन वही साधु कर सकता है, जो तीन वर्ष का दीक्षित हो और गांभीर्य आदि गुणों से युक्त हो। प्रौढ़त्व की दृष्टि से कम से कम सोलह वर्ष का साधु ही इसका पाठक हो सकता है। एक विचारधारा के अनुसार निशीथ सूत्र अंगप्रविष्ट के अंतर्गत आता है, अन्य छेद सूत्र अंगबाह्य हैं।

पंडित दलसुखभाई मालवणिया ने 'निशीथ : एक अध्ययन' में लिखा है कि यह सूत्र किसी समय आचारांग के अन्तर्गत रहा होगा, किन्तु एक समय ऐसा भी आया कि निशीथ को आचारांग से पृथक् कर दिया गया। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि निशीथ आचारांग की अंतिम चूलिका के रूप में था, मूल में नहीं। निशीथ चूर्णि में स्पष्ट है कि इसके कर्ता अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर हैं और सूत्र की दृष्टि से गणधर हैं।

दिगम्बर मान्यता

दिगम्बर ग्रन्थों में निशीथ के स्थान पर 'निसीहिया' शब्द का प्रयोग हुआ है। गोम्मटसार में भी यही शब्द प्राप्त होता है। इसका संस्कृत रूप निषीधिका होता है। गोम्मटसार की टीका में निसीहिया का संस्कृत रूप निषीधिका किया है। आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में निशीथ के लिये निषधक शब्द का व्यवहार किया है। तत्त्वार्थभाष्य में 'निसीह' शब्द का संस्कृत रूप 'निशीथ' माना है। निर्युक्तिकार को भी यही अर्थ अभिप्रेत है। इस प्रकार श्वेताम्बर साहित्य के अभिमतानुसार निसीह का संस्कृत रूप 'निशीथ' और उसका अर्थ अप्रकाश्य है। दिगम्बर साहित्य की दृष्टि से निसीहिया का संस्कृत रूप निशीधिका है और उसका अर्थ प्रायश्चित्त शास्त्र या प्रमाद दोष का निषेध करने वाला शास्त्र है। संक्षेप में सार यह है कि निशीथ का अर्थ रहस्यमय या गोपनीय है। जैसे रहस्यमय विद्या, मंत्र, तंत्र, योग आदि अनधिकारी या अपरिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों को नहीं बताते, उनसे छिपा कर गोप्य रखा जाता है, वैसे ही निशीथ सूत्र भी गोप्य है। वह भी प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष उद्घाटित नहीं किया जा सकता।

ऐतिहासिक दृष्टि

ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर यह भी सहज ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में उस समय जो भिक्षु संघ थे, उनमें इस प्रकार की प्रवृत्तियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित रही होंगी। साधु-साध्वी कहीं देखा-देखी इन प्रवृत्तियों को न अपना लें, इस दृष्टि से श्रमण-श्रमणियों को निषेध किया तथा कदाचित् अपना लें तो उनके प्रायश्चित्त का भी विधान किया गया। इस प्रकार निशीथ में विविध दृष्टियों से निषेध और प्रायश्चित्त विधियाँ प्रतिपादित की गई हैं। प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व से निशीथ का निर्यूहण हुआ है। उस पूर्व में बीस वस्तु है अर्थात् बीस अर्थाधिकार हैं। उनमें तीसरी वस्तु का नाम आचार है। आचार के भी बीस उपविभाग हैं। बीसवें प्राभृतच्छेद से निशीथ का निर्यूहण किया गया है।

इस प्रकार आचार्य जिनदासगणि महत्तर के अनुसार निशीथ के कर्ता अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर और सूत्र की दृष्टि से गणधर सिद्ध होते हैं। प्रश्न उठता है कि भद्रबाहु को पंचकल्पचूर्णिकार ने निशीथ का कर्ता कैसे माना है? इसका समाधान दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति में है। यहां पर निर्युक्तिकार ने लिखा है कि प्रस्तुत दशाएँ अंगप्रविष्ट आगमों में प्राप्त दशाओं से लघु हैं शिष्यों के अनुग्रह हेतु इन लघु दशाओं का निर्यूहण स्थविरों ने किया पंचकल्पभाष्य चूर्णि के अनुसार वे स्थविर भद्रबाहु हैं। संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर, सूत्र के रचयिता गणधर और वर्तमान संक्षिप्त रूप के निर्माता भद्रबाहु स्वामी हैं। वीर निर्वाण के १७५ वर्ष के बीच निशीथ का निर्माण हो चुका था, ऐसा असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है निशीथाध्ययन में बीस उद्देशक हैं और १४२६ सूत्रों में प्रायश्चित्त का विधान है।

निशीथ का आधार और विषय वर्णन

निशीथ आचारांग की पांचवीं चूला है। इसे एक स्वतंत्र अध्ययन भी कहते हैं। इसीलिये इसका दूसरा नाम निशीथाध्ययन भी है। इसमें बीस उद्देशक हैं। पहले के १९ उद्देशकों में प्रायश्चित्त का विधान है और बीसवे उद्देशक में प्रायश्चित्त देने की प्रक्रिया प्रतिपादित की गई है।

उत्सर्ग और अपवाद मार्ग

जैन साधना रूपी सरिता के दो किनारे हैं, एक उत्सर्ग और दूसरा अपवाद। उत्सर्ग मार्ग का अर्थ है आंतरिक जीवन, चारित्र और सद्गुणों की रक्षा, शुद्धि और अभिवृद्धि के लिये प्रमुख सामान्य नियमों का विधान और अपवाद का अर्थ है आंतरिक जीवन आदि की रक्षा हेतु उसकी शुद्धि एव वृद्धि के लिये विशेष नियमों का विधान। उत्सर्ग और अपवाद दोनों का लक्ष्य एक है– साधक को उपासना के पथ पर आगे बढ़ाना। सामान्य साधक के मन में विचार हो सकता है कि जब उत्सर्ग और अपवाद दोनों का लक्ष्य एक है तो फिर दो रूप क्यों?

जैन संस्कृति के मर्मज्ञ मनीषियों ने मानव की शारीरिक और मानसिक दुर्बलता को लक्ष्य में रखकर तथा संघ के उत्कर्ष को ध्यान मे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखकर उत्सर्ग और अपवाद का निरूपण किया है। भाष्यकार लिखते हैं कि समर्थ साधक के लिये उत्सर्ग स्थिति में जिन द्रव्यों का निषेध किया गया है, असमर्थ साधक के लिये अपवाद की परिस्थिति में विशेष कारण से वह द्रव्य ग्राह्य भी हो जाता है। जैन आचार की मूल अहिंसा है। अन्य चार महाव्रत अहिंसा का ही विस्तार हैं। जहाँ प्रमाद है, वहां हिंसा है। संयमी साधक के जीवन में अप्रमाद मुख्य होता है। संयमी साधक विवेकपूर्वक चल रहा है, पहले उसे जीव दिखाई नहीं दिया, पर ज्यों ही कदम आया कि दिखाई दिया। बचाने का प्रयत्न करते हुए भी जीव पर पांव पड़ गया और वह मर गया। यह सहसा प्रतिसेवना है, इसमें कर्मबंध नहीं है। अहिंसा का आराधन श्रमण का उत्सर्ग मार्ग है। वह मन, वचन, काया से जीव हिंसा नहीं करता। वह किसी भी सचित्त वस्तु का स्पर्श नहीं करता। यदि अनिवार्य कारणवश श्रमण को ऊँचे, नीचे, टेढ़े, मेढ़े मार्ग पर जाना पड़े तो वह वनस्पति का या किसी के हाथ का सहारा ले सकता है। यह अपवादमार्ग है। इसी प्रकार श्रमण सचित्त पानी को स्पर्श नहीं कर सकता, पर उमड़ घुमड़ कर वर्षा हो रही हो तो श्रमण लघु शंका या दीर्घ शंका के लिये बाहर जा सकता है, क्योंकि मलमूत्र को बलपूर्वक रोकने से रोग हो सकते हैं।

निशीथभाष्य में ऐसे अनेक प्रसंग हैं कि दुर्भिक्ष आदि की स्थिति में अपवाद मार्ग में श्रमण आधा कर्म आहार ग्रहण कर सकता है। जैन साधु के लिये यह विधान है कि वह चिकित्सा की इच्छा न करे, रोग को शांति से सहन करे, किन्तु जब रोग होने पर समाधि न रहे तो चिकित्सा करवा सकता है। किन्तु इसे गुप्त रखा जाय, क्योंकि यदि विरोधी आलोचना करेंगे तो जिन धर्म की अवहेलना होगी।

प्रायश्चित्त और दंड में अंतर है। प्रायश्चित्त में साधक अपने दोष को स्वयं स्वीकार करता है। किन्तु दंड को इच्छा से नहीं अपितु विवशता से स्वीकार किया जाता है। दंड थोपा जाता है, प्रायश्चित्त हृदय से स्वीकार होता है। इसीलिये राजनीति में दंड का विधान है, जबकि धर्मनीति में प्रायश्चित्त का।

संक्षिप्त सारांश

प्रथम उद्देशक

इसमें ५८ सूत्र हैं। इस उद्देशक में ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन करने पर बल दिया गया है। महाव्रतों में ब्रह्मचर्य चौथे स्थान पर है, किन्तु अपनी महिमा के कारण सभी व्रतों में प्रथम है। जो ब्रह्मचर्य की आराधना कर लेता है, वह समस्त नियमों की आराधना कर लेता है। सभी व्रतों का मूलाधार ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधकों को नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिये। इस आगम के प्रारंभ में ही सर्वप्रथम यह सूचित किया गया है। शरीरिक अंगों को उत्तेजित करने का इसमें पूरी तरह निषेध किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है।

दूसरा उद्देशक

इसमें ५७ सूत्र हैं। पहले आठ सूत्रों में पादप्रोच्छन के विषय में विचार हैं। पुराने फटे हुए कंबल के एक हाथ लंबे-चौड़े टुकडे को पांव-पौंछन कहा गया है। उसके पश्चात् इत्र आदि सुगंधित पदार्थों को सूंघने का निषेध है। पगडंडी, नाली, छींके का ढक्कन आदि बनाने का निषेध है। श्रमण को कठोर भाषा का उपयोग नहीं करना चाहिये, उससे सुनने वाले के मन में क्लेश होता है। भाषा सत्य और सुन्दर होनी चाहिये। अन्य के हृदय को व्यथित करने वाली भाषा का प्रयोग हिंसा है। अल्प असत्य भाषा का प्रयोग भी श्रमण के लिये निषिद्ध है, अदत्त वस्तु ग्रहण करना भी निषिद्ध है, शरीर को सजाना, संवारना, मूल्यवान वस्तुएँ धारण करना निषिद्ध है। साधु चमड़े से बनी वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकते। इस उद्देशक में जिनका निषेध किया गया है, उनका लघुमास प्रायश्चित्त निश्चित किया गया है।

तीसरा उद्देशक

इसमें ८० सूत्र हैं। एक से बारह सूत्र तक साधु को धर्मशाला, मुसाफिरखाना, आरामगृह या गृहस्थी के यहां उच्च स्तर से आहार आदि मांगने का, सामूहिक भोज में भोजन ग्रहण करने का, पैरों के परिमार्जन, परिमर्दन, प्रक्षालन व शरीर के संवाहन का निषेध है। बाल, नाखून आदि काटने का, श्मशान में, खान में, फल सब्जी रखने के स्थान में, उपवन में, धूप रहित स्थान में मलविसर्जन का निषेध है। पालन न करने वाले के लिये लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

चौथा उद्देशक

इसमें १२८ सूत्र हैं। राजा, राज्यरक्षक, नगररक्षक, ग्रामरक्षक, सीमारक्षक, देशरक्षक को वश में करने के लिये उनका गुणानुवाद करना, सचित्त धान आदि का आहार करना, आचार्य की आज्ञा बिना दूध आदि विगय ग्रहण करने का निषेध है। साधु जीवन का सार क्षमा है। क्रोध में विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है, जिससे वैर का जन्म होता है। कलह के मूल में कषाय है। अत: कलह को जागृत करने का निषेध है। माचिस दूसरों को जलाने के पहले खुद जल जाती है। वैसे ही कलह करने वाला स्वयं कर्मबंधन करता है। कलह पाप है, उससे बचना चाहिये।

पाँचवाँ उद्देशक

इसमें ५२ सूत्र हैं। सचित्त वृक्ष की मूल के निकट बैठना, खड़ा होना, सोना, आहार करना, लघुशंका करना, काउसग्ग करना, स्वाध्याय करना निषिद्ध है। अपनी चद्दर गृहस्थ से धुलवाना, अधिक लंबी चादर रखने का निषेध है। पलाश, नीम आदि के पत्तों को धोकर रखने का निषेध है। मुख,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाँत, होठ, नाक से वीणा के समान आवाज निकालने का निषेध है। इन सभी प्रवृत्तियों का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

छठा उद्देशक

इसमें ७८ सूत्र हैं। कुशील सेवन की भावना से किसी भी स्त्री का अनुनय करना, हस्तमैथुन करना, शिश्न का संचालन करना, कलह करना, चित्र-विचित्र वस्त्र धारण करना, पौष्टिक आहार करना आदि निषिद्ध है। ऐसा करने पर गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये इन सभी प्रवृत्तियों का निषेध किया गया है। दिल में विकार भावना जागृत होने पर कामेच्छु कैसी-कैसी प्रवृत्तियाँ करता है, उनका मनोवैज्ञानिक वर्णन इस उद्देशक में किया गया है।

सातवाँ उद्देशक

इसमें ९२ सूत्र हैं। इसमें भी मैथुन सं[illegible] षेध है। कामेच्छा से प्रेरित होकर मालायें, कड़े, आभूषण, चर्म वस्त्र प[illegible] निषेध है। कामेच्छा से स्त्री के अंगोपांग का संचालन करना, शरीर परिकर्म करना, सचित्त पृथ्वी पर सोना, बैठना एवं पशु पक्षी के अंगोपांगों को स्पर्श करने का निषेध किया गया है। इन प्रवृत्तियों को करने वालों को गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

आठवाँ उद्देशक

इसमें १८ सूत्र हैं। धर्मशाला, उद्यान, भवन, वनमार्ग, शून्य मार्ग, तृणगृह, पानशाला, दुकान, गोशाला में अकेला साधु अकेली महिला के साथ रहे, आहार करे, स्वाध्याय करे, शौचादि करे, विकारोत्पादक वार्तालाप करे, रात्रि में स्त्री परीषह करे, अपरिमित कथा करे, साध्वियों के साथ विहार करे, उपाश्रय में रात्रि में महिलाओं को रहने दे, महिलाओं के साथ बाहर जाने-आने का निषेध है। पांच सूत्रों में राजपिंड ग्रहण का निषेध है, ग्रहण करने पर गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है। भगवान ऋषभदेव और महावीर के साधुओं के लिये राजपिंड का निषेध है, शेष २२ तीर्थंकरों के साधुओं के लिये नहीं है। राजपिंड में चारों प्रकार के आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल और रजोहरण इन आठ वस्तुओं को अग्राह्य कहा गया है।

नौवाँ उद्देशक

इसमें २५ सूत्र हैं। इसमें भी राजपिंड का निषेध है। साधु को राजा के अन्तःपुर में प्रवेश नहीं करना चाहिये। अन्तःपुर में सगे-संबंधी या नौकर-चाकर के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता। श्रमण के अंतःपुर में प्रवेश करने पर राजा के मन में उसके प्रति कुशंका पैदा हो सकती है, अतः श्रमण को अंतःपुर प्रवेश का निषेध किया गया है।

दसवाँ उद्देशक

इसमें ४१ सूत्र हैं। आचार्य श्रमणसंघ का अनुशासक है। अनंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्था का केन्द्र है। तीर्थंकर के अभाव में आचार्य ही तीर्थ का संचालन कर्ता है, अत: उसके प्रति आदर सम्मान रखना प्रत्येक साधक का परम कर्त्तव्य है। आचार्य के लिये सम्मानसूचक शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। जो भिक्षु आचार्य के प्रति रोष पूर्ण वचन बोलता है, उसे गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है। ग्लान की विधिपूर्वक सेवा न करने पर, वर्षावास में विहार करने पर, निश्चित्त दिन पर्युषण न करने पर, संवत्सरी के दिन चौविहार उपवास न करने पर, लोच न करने पर, वर्षावास में वस्त्र ग्रहण करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का कथन है।

ग्यारहवाँ उद्देशक

इसमें ९१ सूत्र हैं। इसमें लोहे, तांबे, शीशे, सींग, चमड़े, वस्त्र आदि के पात्र में आहार करने का निषेध है। धर्म की निंदा एवं अधर्म की प्रशंसा करने का निषेध है। दिवस भोजन की निंदा, रात्रि भोजन की प्रशंसा, मद्य-मांस सेवन का निषेध है। स्वच्छंदाचार की प्रशंसा का निषेध है। अयोग्य को दीक्षित करने का निषेध है। अचेत या सचेत साधु का अकेले साध्वियों के साथ रहना निषिद्ध है। आत्मघात करने वाले की प्रशंसा करने का निषेध है इन दोषों का सेवन करने वाले को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

बारहवाँ उद्देशक

इसमें ४४ सूत्र हैं। पहले सूत्र में साधु करुणा से प्रेरित होकर त्रस जीव को न तो रस्सी से बांधे न मुक्त करे। साधु को निस्पृह भाव से संयम साधन करना है यदि साधना को भूल कर अन्य प्रवृत्तियां करेगा तो साधना में विघ्न आयेगा। यहां करुणा या अनुकंपा का प्रायश्चित्त नहीं है, अपितु गृहस्थ की सेवा और संयम विरुद्ध प्रवृत्ति का प्रायश्चित्त है।

तेरहवाँ उद्देशक

इसमें ७८ सूत्र हैं। सचित्त, स्निग्ध, सरजस्क, पृथ्वी पर सोने, बैठने स्वाध्याय करने का, देहरी, स्नानपीठ, दीवार, शिला आदि पर बैठने का गृहस्थ आदि को शिल्प सिखाने का, कौतुक, भूतिकर्म, प्रश्न, निमित्त, लक्षण आदि के प्रयोग का, धातु विद्या या निधि बताने का, पानी से भरे पात्र, दर्पण मणि, तेल, मधु, घृत आदि में मुँह देखने का, वमन, विरेचन या बल बुद्धि वृद्धि के लिये औषध सेवन का निषेध है। ऐसी प्रवृत्तियाँ करने वाले को लघु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

चौदहवाँ उद्देशक

इसमें ४१ सूत्र हैं। पात्र खरीदना, उधार लेना, बदलना, छीनना, पात्र में भागीदारी करना, आज्ञा बिना पात्र लेना, सामने लाया हुआ पात्र लेना विकलांग या असमर्थ को अतिरिक्त पात्र न देना, अनुपयोगी पात्र को रखना पात्र को विशेष सुंदर या सुगंधित बनाना, परिषद से निकल कर पात्र की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याचना करना, पात्र के लिये मासकल्प या चातुर्मास तक रहना निषिद्ध है। ये प्रवृत्तियाँ करने पर लघु चौमासी प्रायश्चित्त का विधान है।

पन्द्रहवाँ उद्देशक

इसमें १५४ सूत्र हैं। पहले चार में साधु की आशातना का और आठ सूत्रों में सचित्त आम्र, आम्रपेशी, आम्रचोयक आदि खाने का लघु चौमासी प्रायश्चित्त है। गृहस्थ से सेवा करवाने का, अकल्पनीय स्थानों में मलमूत्र परठने का, पार्श्वस्थ आदि को आहार-वस्त्र देने का निषेध है। विभूषा की दृष्टि से शरीर एवं वस्त्रों का परिमार्जन निषिद्ध है। ये प्रवृत्तियां करने पर लघु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

सोलहवाँ उद्देशक

इसमें ५० सूत्र हैं। साधु को सागारिक आदि की शय्या में प्रवेश का, सचित्त ईख-गंडेरी चूसने का, अरण्य, वन, अटवी की यात्रा करने वालों से आहार पानी लेने का, असंयमी को संयमी और संयमी को असंयमी कहने का, कलह करने वाले तीर्थिकों से आहार पानी लेने का निषेध है।

सतरहवाँ उद्देशक

इसमें १५५ सूत्र हैं। साधु-साध्वियों को गृहस्थों से सेवा करवाने का, बंद बर्तन खुलवा कर आहार लेने का, सचित्त पृथ्वी पर रखा आहार लेने का, तत्काल बना अचित्त शीतल जल लेने का, 'मेरे शारीरिक लक्षण आचार्यपद के योग्य है' ऐसा कहने का निषेध है। बाजे बजाना, हँसना, नाचना, पशुओं की आवाज निकालना, वाद्य-श्रवण के प्रति आसक्ति का निषेध है। इसके लिये लघु चौमासी प्रायश्चित्त का विधान है।

अठारहवाँ उद्देशक

इसमें ७३ सूत्र हैं। ३२ सूत्रों में नौका विहार के संबंध में विविध दृष्टियों से विचार किया गया है। वैसे तो साधु अप्काय जीवों की विराधना का पूर्ण त्यागी होता है, किन्तु अपवाद के रूप में आचारांग आदि सूत्रों में भी नौका प्रयोग का विधान है। बिना समुचित कारण के नौका विहार करने पर लघु चौमासी प्रायश्चित्त का विधान है।

उन्नीसवाँ उद्देशक

इसमें ३५ सूत्र हैं। औषधि खरीद कर मंगवाना, तीन मात्रा से अधिक औषधि लेना, विहार में साथ रखना, अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करने का निषेध है। निशीथ आदि छेदसूत्रों की अपात्र को वाचना देना, मिथ्यात्वियों को, अतीर्थियों को वाचना देने का निषेध है।

बीसवाँ उद्देशक

इसमें ५१ सूत्र हैं। कपटयुक्त और निष्कपट आलोचना के लिये इस उद्देशक में विविध प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान है। निष्कपट आलोचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने वाले को जितना प्रायश्चित्त आता है, उससे एक माह अधिक कपटयुक्त आलोचना करने वाले को प्रायश्चित्त आता है। भगवान महावीर के शासन में उत्कृष्ट छः मास के प्रायश्चित्त का ही विधान है।

प्रायश्चित्त बौद्ध दृष्टि में

निशीथ के समान ही बौद्ध परंपरा में विनय पिटक का महत्त्व है। इसमें भिक्षु संघ का संविधान है। इसमें तथागत बुद्ध ने भिक्षु-भिक्षुणियों के पालने योग्य नियमों का उपेदश दिया है। इसमें अपराधों, दोषों एवं प्रायश्चित्तों का भी विधान है। बुद्ध के निर्वाण के बाद धर्म संघ की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रथम बौद्ध संगति में कठोर नियमों का गठन किया गया।

प्रायश्चित्त वैदिक दृष्टि से

वैदिक संस्कृति के महामनीषियों ने पापों से मुक्त होने के लिये विधि-विधान किये हैं। ब्राह्मण हत्या को सबसे बड़ा पाप माना गया है। काठक में भ्रूण हत्या को ब्रह्महत्या से भी बड़ा पाप माना है। नारदस्मृति का कथन है कि माता, मौसी, सास, भाभी, फूफी, चाची, मित्रपत्नी, शिष्यपत्नी, बहिन, पुत्रवधू, आचार्यपत्नी, सगोत्रनारी, दाई, व्रतवती नारी के साथ संभोग करने पर गुरुतल्प व्यभिचार का अपराधी हो जाता है। ऐसे दुष्कृत्य के लिये शिश्न काटने के सिवाय कोई दंड नहीं है।

सारांश

सारांश यह है कि चाहे जैन, बौद्ध, वैदिक कोई भी परंपरा हो, सभी में मैथुन, चोरी और हिंसा को गंभीरतम अपराध माना है। जैन और बौद्ध परंपराओं ने संघ को अत्यधिक महत्त्व दिया। प्रायश्चित्त की जो सूचियाँ इन दोनों परम्पराओं में है, उसमें काफी समानता है। बौद्ध परम्परा मध्यममार्गीय रही, इसलिये उसकी आचार संहिता भी मध्यम मार्ग पर ही आधारित है। जैन परंपरा उग्र और कठोर साधना पर बल देती रही, इसलिये उसकी आचार संहिता भी कठोरता को लिये हुए है।

गौतमधर्मसूत्र, वशिष्ठस्मृति, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति में माता, बहिन, पुत्रवधू आदि के साथ व्यभिचार सेवन करने वाले के अंडकोष और लिंग काट कर दक्षिण दिशा में जब तक गिर न पड़े तब तक चलते रहने का दंड है।

निशीथ के भाष्य रचयिता श्री संघदासगणि हैं। निशीथ चूर्णि के रचयिता श्री जिनदासगणि महत्तर है। निशीथ जैसे रहस्य भरे आगम पर विवेचन लिखना खेल नहीं है, यह महत्त्वपूर्ण कार्य श्री मधुकर मुनि ने इस पर हिंदी में प्रवाह पूर्ण सुन्दर विवेचन कर पूरा किया है।

–10/595, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org